जैन दर्शन में ज्ञान का स्वरूप

• डॉ. कालिदास जोशी

समूचे जैन दार्शनिक चिन्तन का मुख्य आधार है अनेकान्तवाद। यह विश्व के स्वरूप को समझने का एक दृष्टिकोण है। एकान्त का मतबल है कोई एक ही निश्चय या निर्णय। अनेकान्तवाद का यह मन्तव्य है कि किसी भी वस्तु के संबंध में ऐकान्तिक पक्ष लेना सम्भव नहीं होता, क्योंकि कोई भी वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है। मुक्त या केवली अवस्था में जीव को उन सभी धर्मों का ज्ञान होता है। उस का ज्ञान सीमित या अधूरा नहीं होता। परन्तु बद्ध जीव में इनमें से कुछ ही धर्मों का ज्ञान हो सकता हैं। सभी धर्मों का नहीं। इस को समझाने के लिये हाथी और सात अंधों की कथा का उल्लेख किया जाता है। व्यवहार में हम किसी वस्तु के संबंध में कितना भी समझें, कहें, या वर्णन करें, तो भी उसके सभी धर्मों का वर्णन नहीं कर सकेंगे। कुछ धर्म हमारे कथन की मर्यादा के बाहर ही रहेंगे। यही अनेकान्तवाद का तात्पर्य है।

सात नय तथा चार निक्षेप - अनन्त गुणात्मक वस्तु का सम्पूर्ण वर्णन करने की शक्ति किसी भी मनुष्य के पास न होने से हम लोग जो भी कुछ कहते हैं वह हमेशा अन्य गुण सापेक्ष ही समझा जाना चाहिये। किसी भी वस्तु के वर्णन में द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव, इन चार बातों का विचार किया जाता है। वस्तु के अनन्त गुणों में से और पर्यायों से कुछ ही ओर ध्यान देकर हम अपना अभिमत या अभिप्राय बनाते हैं। इस सीमित, अपूर्ण, अभिप्राय को 'नय' कहते हैं। नय के सात प्रकार कहे गये हैं। १) नैगम नय २) संग्रह नय ३) व्यवहार नय ४) ऋजुसूत्र नय ५) शब्द नय ६) समभिरूढ़ नय, तथा ७) एवं भूत नय प्रथम तीन नय द्रव्यार्थिक, तथा अन्तिम चार नय पर्यायार्थिक कहलाते हैं।

इन सात नयों के साथ चारनिक्षेप माने जाते हैं। (१) नाम निक्षेप का मतलब है, किसी वस्तु को नाम से पहचानना। (२) स्थापना निक्षेप में वस्तु को उसके आकार के अनुसार ग्रहण कर लिया जाता है। (३) द्रव्य निक्षेप वस्तु की सरंचना जिस द्रव्य से हुई है उसकी ओर ध्यान देने को कहते हैं। (४) भाव निक्षेप, अर्थात वस्तु के साथ जो संकल्पना या बोध भाव जुड़ा हुआ होता है, उसके आधार पर वस्तु को जानना।

स्याद्वाद - वस्तु का अनेकान्त स्वरूप, तथा उसका ज्ञान हमेशा नयात्मक ही होना, इन दो तथ्यों को समझ लेने पर स्याद्वाद को हमें स्वीकार करना ही पड़ता है। हमारा ज्ञान परिपूर्ण न होकर अंशात्मक होता है इसका मतलब यह नहीं होता कि वह असत्य होता है। अपूर्ण होने पर भी उसमें सत्य का अंश होना ही चाहिये। इसीलिये 'सत्य' या 'असत्य' यह ज्ञान की कसौटी न मानकर वह कसौटी 'स्थान' (शायद ऐसा हो) यह माननी पड़ेगी। वस्तु के अनन्त धर्मों में से किसी एक के संबंध में कह सकेंगे 'स्यादस्ति, और किसी अन्य धर्म के बारे में 'स्यान्नास्ति' ऐसा कहना पड़ेगा। 'अस्ति' तथा 'नास्ति' इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस प्रकार एक ही वस्तु के सन्दर्भ में कर सकते हैं। अस्ति तथा नास्ति इन दोनों में जो भेद या विरोध समझा जाता है वह 'स्यात्' इस शब्द का प्रयोग करने से खत्म हो जायेगा। यही स्याद्वाद का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त है। प्रसिद्ध जैन दार्शनिक मल्लिषेण सूरि के स्याद्वादमंजरी में कहा गया है कि ज्ञान के अनन्त धर्मात्मक होने से ही स्याद्वाद सिद्ध होता है।

सप्तभंग - भंग का अर्थ है विभाजित करना या तोड़ना। स्याद्वाद के अनुसार किसी भी वस्तु के संबंध में जो अनेक विधान संभव होंगे उनके सात विभाग या 'भंग' हो सकते हैं। उनमें तीन भंग मूलभूत माने जाते हैं। भगवती सूत्र इस ग्रंथ में केवल तीन ही भंगों का उल्लेख मिलता है। वे तीन भंग है -(१) स्यादस्ति (२) स्यान्नास्ति (३) स्याद वक्तव्यः। परन्तु बाद में यह देखा गया कि इन तीनों में से दो-दो को एक दूसरे के साथ लेने से और चार भंग बन जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान के सात भंग या विभाग बाद में प्रचलित हुवे, उनको सप्तभंग कहा जाने लगा, तथा स्याद्वाद और सप्तभंग इन दोनों के बीच एक अटूट रिश्ता बन गया। वे अन्य चार भंग इस प्रकार हैं -(४) स्यादस्ति नास्ति (५) स्यादस्ति च अवक्तव्यः (६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यः तता (७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यः।

ज्ञान के पाँच प्रकार - ज्ञान जीव का गुण है। स्वभाव से जीव अनन्त ज्ञान से युक्त रहता है। परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म के कारण यह अनन्त ज्ञान हम सब लोगों में आच्छादित हो जाता है। ज्ञान के पाँच प्रकार होते हैं। वे हैं -मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनः पर्यय, तथा केवल ज्ञान। इंद्रिय के सन्नि कर्ष से मन में जो वस्तु का बोध होता है उसको मतिज्ञान कहते हैं। इसके चार स्तर होते हैं। अवग्रह बाद विशेष बोध की जिज्ञासा होती है, वह ईहा नाम का दूसरा स्तर है। उसके द्वारा जो बोध होगा वह 'अवाय' नाम का तीसरा स्तर है। कालान्तर से इसका स्मरण होता है, वही चौथा स्तर धारणा कहलाता है। मतिज्ञान के अनेक भेद माने गये हैं। जैन दार्शनिकों ने उनके संबंध में विस्तृत विश्लेषण किया है।

ज्ञान का दूसरा प्रकार है श्रुत ज्ञान। इसका मुख्य आधार होता है शास्त्र वचन। मति तथा श्रुत इन दोनों को परोक्ष ज्ञान कहा जाता है। इसके अलावा जो ज्ञान जीव को इंद्रियों के माध्यम के बिना प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। उसके तीन प्रकार है अवधि, मनः पर्यय, तथा केवल। अवधि ज्ञान पुद्गल द्रव्य के ज्ञान को कहते हैं। मनः पर्यय ज्ञान चारित्र्य संपन्न साधु लोगों को ही प्राप्त हो सकता है। इससे किसी भी व्यक्ति के मन के विचारों का ज्ञान होता है। सम्यक् चारित्र्य के आचरण से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जाने से जीव की स्वभावगत अनंत ज्ञानशक्ति प्रकट होने से केवल ज्ञान का उदय होता है। उसको स्थल और काल की कोई सीमा नहीं रहती। केवली पुरुष को किसी भी वस्तु के सभी अनन्त गुणों का ज्ञान हो जाता है। वह जीव लोकाकाश को पार करके संसार के बन्धन से हमेशा के लिये मुक्त हो जाता है। केवल ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होना यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

* * * * *

एफ-३०५ एम्पनगरी
बिबवेवाड़ी, पुणे ४११०३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org